अध्याय 3

उत्पादन तथा लागत के सिद्धान्त
(Theory of Production and Cost)

यूनिट 1 : उत्पादन का सिद्धान्त (Unit 1 : Theory of Production)

सीखने के परिणाम (Learning Outcomes)

इस यूनिट के अन्त में, आप निम्न में समर्थ होने चाहिये :

- उत्पादन की परिभाषा तथा उत्पादन कार्य का वर्णन
- उत्पादन के विभिन्न घटकों के लक्षणों का वर्णन
- अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उत्पादन फलनों के बीच अन्तर करना
- ह्रासमान प्रतिफल नियम तथा पैमाने के प्रतिफल के उदाहरण देना
- समान उत्पाद वक्र तथा समान लागत वक्र का प्रयोग करके उत्पादन अनुकूलतम करने का वर्णन करना।

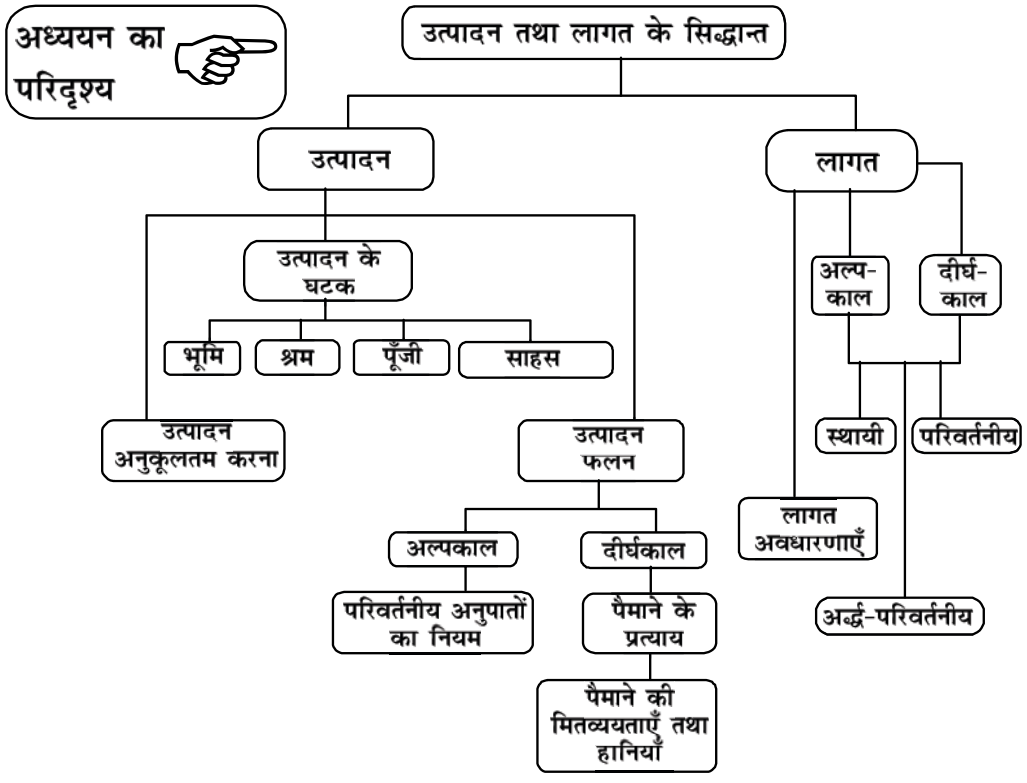

© The Institute of Chartered Accountants of India

1.0 उत्पादन का अर्थ (MEANING OF PRODUCTION)

उत्पादन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि है। अंतिम विश्लेषण में लोगों का जीवन-स्तर उत्पादन की मात्रा तथा विविधता पर निर्भर करता है। वास्तव में, किसी अर्थव्यवस्था की निष्पत्ति का ज्ञान उसके उत्पादन के स्तर द्वारा लगाया जा सकता है। वे देश जो बड़ी मात्रा में माल तैयार करते हैं, समृद्ध हैं तथा जो कम उत्पादन करते हैं, वे अपेक्षाकृत गरीब हैं। इस प्रकार किसी अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पादन किये जा रहे माल तथा सेवाओं की मात्रा उस अर्थव्यवस्था की समृद्धि अथवा गरीबी का निर्धारण करती है। विकास की प्रक्रिया अर्थव्यवस्था में उत्पादन के स्तर को बढ़ाने पर निर्भर है। संयुक्त राज्य अमेरिका एक समृद्ध देश है, क्योंकि उसके उत्पादन का स्तर ऊंचा है।

साधारण बोलचाल में, मद 'उत्पादन' को कुछ महत्वपूर्ण बनाने की गतिविधि को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग किया जाता है। बहुधा गेहूँ, चावल या किसानों द्वारा कोई अन्य फसल उगाना तथा सीमेंट, रेडियो सैट, ऊन, मशीनरी या कोई अन्य औद्योगिक उत्पाद सभी उत्पादन के रूप में संदर्भित किये जाते हैं। वास्तव में अर्थशास्त्र में उत्पादन से सही-सही क्या अर्थ लेते हैं? अर्थशास्त्र में 'उत्पादन' को अपेक्षाकृत व्यापक दृष्टि से प्रयोग किया जाता है उस प्रक्रिया का संदर्भ लेने के लिए जिसके द्वारा व्यक्ति संसाधनों जैसे व्यक्ति, सामग्री, पूँजी, समय, आदि का उपयोग करता है तथा ऊपर काम करते हुए वस्तुओं तथा सेवाओं में उनको परिवर्तित कर देता है ताकि मानवीय आवश्यकताओं को संतुष्ट किया जा सके। दूसरे शब्दों में, उत्पादन ऐसी कोई आर्थिक गतिविधि है जो इनपुट्स को आऊटपुट्स में परिवर्तित कर देती है जो मानवीय आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में सक्षम हों। चाहे यह सारवान माल बनाने की बात हो या सेवा के प्रावधान की बात हो, इसको उत्पादन में शामिल किया जाता है बशर्ते कि यह किन्हीं व्यक्तियों की आवश्यकताओं की संतुष्टि करे। अत: अर्थशास्त्र में, गतिविधियों जैसे एक औद्योगिक श्रमिक द्वारा कपड़ा बनाना, रिटेलर की सेवाएँ जो उसे ग्राहकों को देनी होती हैं, डॉक्टर्स, वकीलों, अध्यापकों, अभिनेताओं, नर्तकों, आदि की सेवाएँ सभी उत्पादन हैं।

James Bates और J.R. Parkinson के अनुसार, ''उत्पादन माल तथा सेवाओं के रूप में निर्मित उत्पादों में संसाधनों के परिवर्तन की सुसंगठित गतिविधि है; तथा उत्पादन का उद्देश्य होता है ऐसे परिवर्तित संसाधनों की माँग को संतुष्ट करना।''

यह भी उल्लेखनीय है कि उत्पादन को कदापि वस्तुओं का सृजन ही नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि विज्ञान के आधारभूत नियम से व्यक्ति किसी पदार्थ का उत्पादन कर ही नहीं सकता है व्यक्ति जो कुछ कर सकता है वह है केवल उपयोगिता का सृजन तथा संवर्द्धन। जब कोई व्यक्ति मेज बनाता है तो वह उस पदार्थ को नहीं बनाता जिससे लकड़ी बनती। वह तो मात्र लकड़ी को ही मेज में बदलता है। ऐसा करके वह लकड़ी में उस उपयोगिता का सृजन कर देता है जो पहले नहीं थी।

उत्पादन की प्रक्रिया में लगे मौद्रिक व्यय अर्थात् निर्मित उत्पादों में संसाधनों के परिवर्तन उत्पादन लागत का सृजन करता है।

उत्पादन निम्न प्रक्रियाओं का सतत् कार्य है जिसमें प्राकृतिक साधनों में उपयोगिताओं का योगदान किया जाता है, जिससे उनसे अधिक संतोष प्राप्त किया जा सके।

(*i*) प्राकृतिक साधनों के स्वरूप में परिवर्तन : अधिकांश विनिर्माणी प्रक्रियाएँ रूप उपयोगिता के सृजन अर्थात् कच्चे माल को लेकर उनसे किसी उपयोग योग्य वस्तु परिवर्तित करने से सम्बन्धित होती हैं। जैसे लकड़ी के एक लटठे को एक मेज में अथवा लोहे को एक मशीन के रूप में रूपान्तरण करने के कार्य इत्यादि। इसे रूप उपयोगिता प्रदान करने की क्रिया के नाम से पुकारा जा सकता है।

(*ii*) साधनों के स्थान को परिवर्तित कर देना, अर्थात् उन स्थानों से हटाना जहाँ उनका कोई उपयोग न हो, अथवा नगण्य उपयोग हो तथा उन स्थानों पर ले जाना, वहाँ वे अधिक उपयोगी हो जाते हैं। स्थान सम्बन्धी उपयोगिता निम्न प्रकार से प्राप्त की जाती है :

(अ) भूमि से खनन करना जैसे कोयले, खनिज, सोना तथा अन्य धातु अयस्कों को खानों में से निकालकर बाजारों में भेजकर उनकी पूर्ति करना।

(ब) वस्तुओं का उन स्थानों से स्थानान्तरण करना, जहाँ वे नगण्य अथवा कुछ भी संतोष प्रदान नहीं कर रही हों तथा उन स्थानों पर ले जाना जहाँ उनकी उपयोगिता अधिक होती है जैसे मलाया में टिन बहुत कम उपयोगी है, जब तक कि उसको

© The Institute of Chartered Accountants of India

उन औद्योगिक केन्द्रों में नहीं लाया जाता, जहाँ आवश्यक तकनीक एवं मशीनरी उपलब्ध होती है, जिनसे पैकिंग के लिए धातु के बक्से बनाये जाते हैं। दूसरा उदाहरण है, कश्मीर के बागानों में जो सेबों का उत्पादन होता है, वह किसानों के लिए अल्प महत्त्व का है। परन्तु जब ये सेब ऐसे बाजारों में भेजे जाते हैं जहाँ मानव बस्तियाँ घनी बसी हुई हैं और भीड़-भाड़ वाले शहरी केन्द्र हैं तब वे अधिक संख्या में मनुष्यों को अधिक संतोष प्रदान करते हैं। ये उदाहरण केवल उन अतिरिक्त उपयोगिताओं की वृद्धि की ओर संकेत करते हैं जो समस्त वस्तुओं में बढ़ जाती है, जिसमें यातायात की समस्त प्रणालियों, यातायात क्षेत्र के श्रमिकों और वस्तुओं के यातायात और विपणन कार्य करने वाले समस्त मध्यस्थों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

(*iii*) वस्तुओं को उन समयों में उपलब्ध करवाना जब साधारणत: वे उपलब्ध नहीं होते हैं जैसे फसल कटने के बाद खाद्यान्नों का भंडार अगली फसल के कटने तक की अवधि के लिए किया जाता है। मौसमी फलों को डिब्बों में बन्द करके रखा जाता है ताकि वे बैमौसम में काम आ सकें। ये सब विधियाँ समय उपयोगिता में वृद्धि के उदाहरण हैं।

(*iv*) व्यक्तिगत उपयोगिताओं को सेवाओं के रूप में उपयोग में लाना जैसे संगठनकर्ताओं, व्यापारियों, यातायात कर्मियों इत्यादि इस प्रकार की उपयोगिता में वृद्धि के उदाहरण हैं।

उपरोक्त समस्त क्रियाओं का मूलभूत उद्देश्य एक ही है, अर्थात् किसी न किसी रूप में उपयोगिता का सृजन करना। अत: वस्तुओं एवं सेवाओं में उपयोगिता का सृजन करना ही उत्पादन है। उदाहरण के लिए, ऊनी सूट के निर्माण में विभिन्न प्रकार से उपयोगिता का सृजन होता है। पहले, ऊन का रूपान्तरण ऊनी कपड़े के रूप में कताई मिल (रूप बदलकर उपयोगिता उत्पन्न करना) के माध्यम से किया जाता है। उसके बाद उसे बिक्री के स्थान पर ले जाया जाता है। (यातायात के द्वारा उपयोगिता वृद्धि) चूँकि ऊनी कपड़ों का उपयोग केवल सर्दी में किया जाता है जब वे क्रेताओं के द्वारा खरीदे जाते हैं, अत: सर्दी के मौसम तक उसे सुरक्षित रखना पड़ता है। (समय उपयोगिता) इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में विभिन्न वर्गों की सेवाओं का उपयोग किया जाता है (जैसे मिल मजदूर, दुकानदार, एजेन्ट इत्यादि) जिससे कि उपयोगिताओं में वृद्धि की जा सके। इस प्रकार उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया उपयोगिता का सृजन करना है जैसे, रूप उपयोगिता, स्थान उपयोगिता, समय उपयोगिता इत्यादि, इनके अतिरिक्त उत्पादन कार्य कुछ भी नहीं है।

उल्लेखनीय है कि उत्पादन प्रक्रिया को इस बात की अनिवार्यत: आवश्यकता नहीं है कि यह भौतिक इनपुटों को भौतिक उत्पादन में परिवर्तन का समावेश करे। उदाहरण के लिए, सेवाओं का उत्पादन जैसे वकीलों, डॉक्टर्स, संगीतज्ञों, परामर्शदाताओं, आदि की सेवाएँ अमूर्त उत्पादन करने के लिए अमूर्त इनपुट्स का समावेश करते हैं। लेकिन, उत्पादन में प्रेम तथा आत्मीयता के वशीभूत किसी के द्वारा किया गया घरेलू काम, स्वैच्छिक सेवाएँ तथा स्वत: उपयोग के लिए तैयार किया गया माल का समावेश नहीं करता। बाजार में विनिमय की भावना उत्पादन का एक आवश्यक अंग होती है।

उत्पादन प्रक्रिया में किया गया मौद्रिक व्यय अर्थात संसाधनों को निर्मित उत्पादों में परिवर्तित करने के लिए उत्पादन लागत का सृजन करता है। यद्यपि उत्पादन की लागत को पूर्ण उत्पादन समीक्षा के लिए ध्यान में नहीं रखा जाता तथापि व्यावसायिक निर्णयन के लिए यह अवश्य ही अत्यन्त अहम विषय है। यही नहीं, उत्पादन के सिद्धान्त में, हम अपने आपको उत्पादन के नियमों, उत्पादन फलन तथा उत्पादन अनुकूलतमीकरण की विधियों तक ही सीमित रखेंगे। वैसे वह स्मरण रखना आवश्यक है कि एक विशेष उत्पादन निर्णय मात्र भौतिक उत्पादकता पर आधारित नहीं हो सकता है जो एकमात्र परिचालन कार्यक्षमता पर आधारित हो। एक उत्पादकीय गतिविधि की लाभोपार्जनक्षमता उत्पादन से वसूली किये गये आगम पर तथा उस उत्पादन को जुटाने में लगी लागतों पर निर्भर करेगी। लागत तथा आगम के पहलुओं को आने वाली यूनिटों में समझाया जायेगा।

1.1 उत्पादन के घटक (FACTORS OF PRODUCTION)

उत्पादन के घटकों से इनपुट्स का संदर्भ लिया जाता है। एक इनपुट एक माल या सेवा है जो एक फर्म अपनी उत्पादन प्रक्रिया में उपयोगार्थ क्रय करती है। उत्पादन प्रक्रिया को इनपुट्स की व्यापक किस्मों की अपेक्षा होती है जो उत्पादन की प्रकृति पर निर्भर करते हैं। आधुनिक अर्थव्यवस्था में वस्तुएं तैयार करने की प्रक्रिया पर्याप्त जटिल है। एक वस्तु को अनेक चरणों से होकर गुजरना होता है तथा बहुत से हाथों से जाना होता है तब जाकर ही वह अंतिम रूप में उपभोक्ता तक पहुँचती है। भूमि, श्रम, पूंजी तथा साहस वे सब घटक या संसाधन हैं जो वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन को संभव बनाते हैं। यहां

© The Institute of Chartered Accountants of India

तक कि डबल रोटी का एक छोटा-सा टुकड़ा भी उत्पादन के इन घटकों के सक्रिय योगदान के बिना तैयार नहीं किया जा सकता चूँकि भूमि से प्राकृतिक संसाधनों का बोध होता है, मानवीय उपक्रम को क्रियात्मक तथा गुणात्मक रूप से तीन अंगों में बांटा जाता है–श्रम, पूंजी तथा साहस।

हम इन उत्पादकीय साधनों का संक्षेप में निम्न अनुच्छेदों में वर्णन कर सकते हैं :

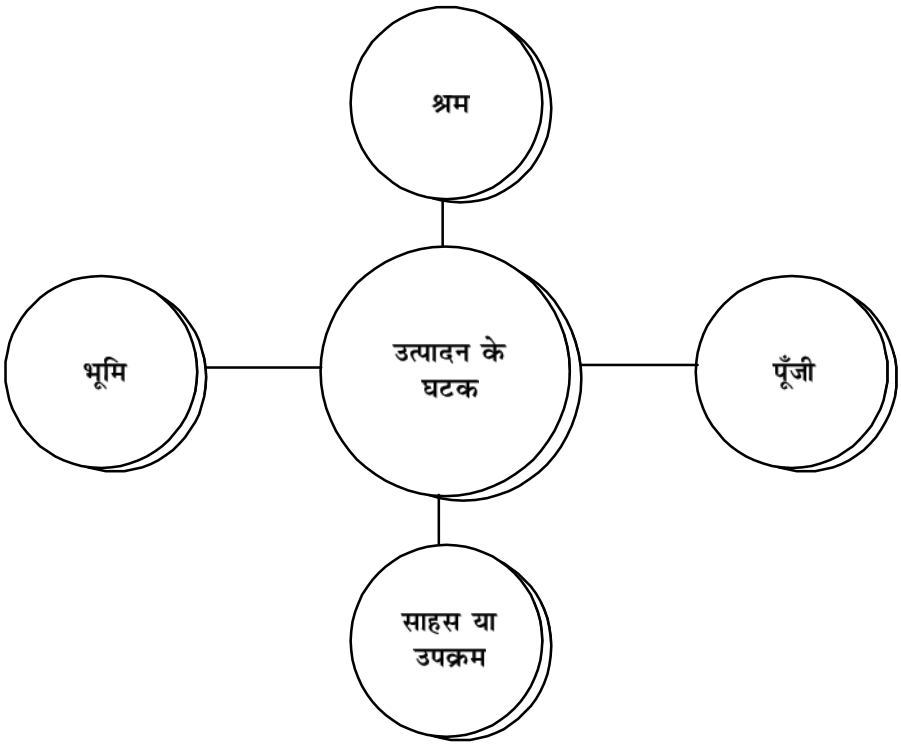

उत्पादन के इन घटकों का हम संक्षेप में निम्नलिखित अनुच्छेदों में वर्णन कर सकते हैं–

1.1.0 भूमि (Land)

अर्थशास्त्र में 'भूमि' शब्द कुछ विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह मात्र मिट्टी या पृथ्वी का धरातल ही नहीं है लेकिन इसमें प्रकृति के सभी नि:शुल्क उपहार शामिल हैं, भूमि में भूमि के अलावा, साधारण चलन में, प्राकृतिक संसाधन, भूमि की उर्वरा-शक्ति, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति आदि सम्मिलित हैं। यह व्यक्त करना संक्षिप्त रूप में कठिन है कि निर्दिष्ट घटक का कौन-सा भाग प्रकृति के उपहार के कारण ही एकमात्र विद्यमान है और कौन-सा भाग विगत में किये गये मानवीय प्रयासों से सम्बन्ध रखता है। अत: एक सैद्धान्तिक विचारधारा के रूप में हम निम्न लक्षणों की एक सूची बना सकते हैं जो निर्दिष्ट घटक को भूमि कहे जाने की सार्थकता स्पष्ट करते हैं :

(*i*) **भूमि प्रकृति का एक उपहार है**–भूमि प्रकृति का एक नि:शुल्क उपहार है। इसे मनुष्य द्वारा न तो बनाया जा सकता है और न नष्ट किया जा सकता है।

(*ii*) **भूमि की आपूर्ति स्थिर होती है**–मात्रा की दृष्टि से भूमि निश्चित रूप से सीमित है। इस दृष्टि से यह उत्पादन के अन्य घटकों से भिन्न है क्योंकि व्यावहारिक उद्देश्यों हेतु यह स्थायी साधन है; माँग में कोई भी परिवर्तन, भूमि की विद्यमानता की मात्रा को प्रभावित नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में, भूमि की आपूर्ति अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से पूर्णत: बेलोचदार होती है। लेकिन, किसी फर्म की दृष्टि में भूमि की आपूर्ति अपेक्षाकृत लोचदार होती है।

(*iii*) **भूमि में स्थायी एवं अनाशवान शक्तियाँ होती हैं**–भूमि प्रकृति में स्थायी होती है और इसे नष्ट नहीं किया जा सकता। रिकार्डो के अनुसार, भूमि की उत्पादकीय शक्ति अनश्वर है अत: भूमि की विशेषताओं को समाप्त नहीं किया जा सकता है, हाँ उसकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है, जिसे पुन: उपजाऊ बनाया जा सकता है।

© The Institute of Chartered Accountants of India

(*iv*) **भूमि एक निष्क्रिय घटक है** (Land is a Passive Factor)–जब तक भूमि पर मानवीय प्रयास नहीं किया जाता यह स्वयं कुछ भी उत्पादन नहीं कर सकती है।

(*v*) **भूमि अचल या अगतिमान है** (Land is Immobile)–भौगोलिक अर्थों में, भूमि को भौतिक तौर पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जा सकते हैं। किसी दिये गये स्थान के प्रति विशिष्ट प्राकृतिक घटकों को अन्य स्थानों पर नहीं ले जाया जा सकता है।

(*vi*) **भूमि के विविध उपयोग हैं** (Land has Multiple Uses)–भूमि को विविध उद्देश्यों के लिए काम लाया जा सकता है, यद्यपि सभी उपयोगों में इसकी उपयुक्तता वैसी ही नहीं होती।

(*vii*) **भूमि असमान रूपी होती है** (Land is Heterogeneous)–भूमि के दो टुकड़े असमान होते हैं। वे उपज तथा स्थिति में भिन्न होते हैं।

1.1.1 श्रम (Labour)

'श्रम' शब्द से आशय वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन की ओर उन्मुख केवल मानसिक अथवा शारीरिक श्रम से है। दूसरे शब्दों में, इससे विभिन्न प्रकार के मानवीय प्रयासों का बोध होता है जिसके लिए मानवीय शारीरिक श्रम, चातुर्य तथा बुद्धिमत्ता के उपयोग की आवश्यकता होती है। लेकिन यह कहना कठिन होगा कि किसी मानवीय प्रयास में उपरोक्त तीनों की आवश्यकता नहीं है; प्रत्येक का अनुपात अलग-अलग हो सकता है। आर्थिक महत्ता देने के लिए, श्रम ऐसे उद्देश्य से किया जाना चाहिये कि उसे किसी आर्थिक प्रतिफल की आशा से किया जा सके। प्रेम और सद्भावना से किया गया कोई काम चाहे उससे मानव कल्याण में कितनी ही भी वृद्धि क्यों न हो, आर्थिक शब्दावली के रूप में श्रम नहीं माना जाा सकता है। इससे स्पष्ट है कि इच्छानुसार अथवा प्रेम की भावना से किया गया कोई काम अर्थशास्त्र में श्रम नहीं कहा जा सकता, जब तक वह धन प्राप्ति से प्रेरित न हो। इसी कारण गृहिणी की सेवाएं श्रम नहीं मानी जातीं जबकि महरी की सेवाएं श्रम हैं। यदि कोई व्यक्ति मस्ती के लिए अपने मित्रों के सामने गाता है तो यह श्रम नहीं बन जाता, चाहे उसमें कितना ही श्रम क्यों न लगा हो। दूसरी ओर, यदि कोई व्यक्ति किसी भुगतान हेतु गाता है, तब यह गतिविधि श्रम कहलाती है।

श्रम के लक्षण (Characteristics of Labour)

(1) **मानवीय प्रयास**–दूसरे साधनों की तुलना में, श्रम भिन्न प्रकार का होता है; यह साधन मनुष्य से जुड़ा हुआ है जबकि अन्य साधन प्रत्यक्ष रूप में मनुष्य से सम्बन्धित नहीं होते हैं, परिणामस्वरूप कुछ मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक विषय हैं जो इसके विषय में उत्पन्न हो जाते हैं जबकि अन्य साधनों के संदर्भ में ऐसा नहीं होता है। अत: आराम, उचित व्यवहार, अनुकूल कार्य वातावरण, आदि श्रमिकों के लिए आवश्यक हैं।

(2) **श्रम नाशवान होता है**–श्रम अत्यन्त 'नाशवान' होता है, क्योंकि उसको अगले दिन पूरा का पूरा प्राप्त करना संभव नहीं है। दूसरे शब्दों में श्रमिक अपने श्रम का भंडारण नहीं कर सकता।

(3) **श्रम एक सक्रिय साधन है**–श्रम की सक्रिय सहभागिता के बिना भूमि और पूँजी किसी चीज का उत्पादन नहीं कर सकती।

(4) **श्रम श्रमिक से अपृथकनीय होता है** (Labour is Inseparable from the Labourer)–एक श्रमिक स्वयं अपनी श्रम शक्ति का स्रोत होता है। जब एक श्रमिक अपना श्रम बेचता है तो उसे भौतिक तौर पर वहाँ मौजूद होना होता है जहाँ वह इन्हें बेचता है। श्रमिक मजदूरी के प्रति अपना श्रम बेचता है लेकिन काम करने की क्षमता बनाये रखता है।

(5) **श्रम शक्ति श्रमिक से श्रमिक में अलग होती है** (Labour Power Differs from Labourer to Labourer)–श्रम इस दृष्टि से विपरीत रूपी होता है कि श्रम शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होती है। श्रम शक्ति या श्रम की कार्यक्षमता श्रमिक के जन्मजात तथा अर्जित किये गये गुणों, कार्य वातावरण के लक्षणों तथा कार्य के प्रति प्रोत्साहन पर निर्भर करता है।

(6) **हो सकता है सभी श्रम उत्पादकीय न हो** (All Labour may not be Productive) अर्थात आवश्यक नहीं कि सभी प्रयास संसाधनों का उत्पादन करें।

© The Institute of Chartered Accountants of India

(7) **श्रम की कमजोर सौदाकारी शक्ति होती है** (Labour has Poor Bargaining Power)–श्रम की सौदाकारी शक्ति कमजोर होती है। श्रम का कोई आरक्षित मूल्य नहीं होता। चूँकि श्रम का स्टॉक नहीं किया जा सकता है। श्रम को सेवायोजकों द्वारा पेश की गई मजदूरी पर काम करने के लिए विवश किया जाता है। इस कारण से, जब उनकी सेवायोजकों से तुलना की जाती है तब श्रमिकों की कमजोर सौदाकारी शक्ति सामने आती है तथा उनका शोषण किया जा सकता है तथा कम मजदूरी लेने के लिए विवश किया जा सकता है। आर्थिक दृष्टि से श्रमिक कमजोर होता है जबकि सेवायोजक आर्थिक तौर पर शक्तिशाली होता है यद्यपि बीसवीं तथा इक्कीसवीं शताब्दी के दौरान श्रम के पक्ष में बहुत कुछ बदल चुका है।

(8) **श्रम गतिशील होता है**–श्रम एक गतिशील घटक होता है। दृश्य तौर पर, श्रमिक एक कार्य से दूसरे कार्य पर जा सकता है या एक स्थान से दूसरे स्थान पर। लेकिन वास्तविकता में, एक कार्य से दूसरे कार्य को या एक स्थान से दूसरे स्थान पर श्रम के स्वतंत्र आवागमन के मार्ग में अनेक बाधाएँ होती हैं।

(9) **उसके लिए माँग के प्रति श्रम की पूर्ति का समायोजन शीघ्र नहीं होता** (There is no rapid adjustment of supply of labour to the demand for it)–श्रम की कुल पूर्ति को तुरन्त ही घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता है।

(10) **श्रम के घंटों तथा आराम के घंटों के बीच चयन**–श्रमिक को श्रम के घंटे तथा आराम के घंटों के बीच चयन करना होता है। श्रम की आपूर्ति तथा मजदूरी दर प्रत्यक्षत: सम्बन्धित होते हैं, इससे बोध होता है कि ज्यों ही मजदूरी दर बढ़ती है, श्रमिक आराम के घंटे कम करके श्रम की आपूर्ति बढ़ाने की ओर प्रवृत्त होते हैं। वैसे आय के एक न्यूनतम स्तर के बाद श्रमिक श्रम की आपूर्ति को घटाता है तथा मजदूरी दर में अतिरिक्त वृद्धि होने पर आराम के घंटे बढ़ाता है। इसका अर्थ यह है कि वह अधिक मुद्रा अर्जन के स्थान पर अधिक आराम को प्राथमिकता देता है।

1.1.2 पूंजी (Capital)

पूँजी की परिभाषा के अन्तर्गत हम व्यक्ति अथवा समाज की सम्पत्ति के उस भाग को जो आगे और सम्पत्ति के उत्पादन के लिए प्रयुक्त किया जाता है, के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। वास्तव में पूंजी एक संचयी स्टॉक धारणा है जो एक नियत अवधि में आय प्रदान करती है और आय एक प्रवाह धारणा मानी जाती है। यहां सम्पत्ति और पूंजी में अन्तर समझना आवश्यक है। जबकि सम्पत्ति उन सभी वस्तुओं एवं मानवीय योग्यताओं को कहते हैं जो कि उत्पादन कार्य में उपयोगी होते हैं, जिससे मूल्य प्राप्त होता है परन्तु पूँजी इन वस्तुओं एवं सेवाओं के एक भाग को ही कहा जा सकता है क्योंकि यदि इन वस्तुओं में से कुछ व्यर्थ पड़ी रह जाए तो उनको पूँजी नहीं कहा जा सकता, उनको सम्पत्ति के वर्ग में रखना पड़ेगा।

पूंजी को 'उत्पादन के उत्पादित साधनों' अथवा मानव द्वारा बनाये गये उत्पादन के यन्त्रों के रूप में ठीक प्रकार से परिभाषित किया गया है। यह परिभाषा भूमि तथा श्रम से पूंजी को अलग करती है क्योंकि भूमि तथा श्रम उत्पादित घटक नहीं हैं। वे उत्पादन के प्राथमिक या मौलिक घटक हैं, जबकि पूंजी एक प्राथमिक अथवा मौलिक घटक नहीं है; यह तो उत्पादन का एक उत्पादित घटक है। इसे प्रकृति के साथ काम करके मनुष्य द्वारा अर्जित किया जाता है। अत: पूंजी को भली-भांति उत्पादन के मानवीय उपकरणों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। मशीन टूल्ज तथा उपकरण, कारखाने, बाँध, नहरें, यातायात, उपकरण आदि पूंजी के कुछ उदाहरण हैं। ये सभी व्यक्तियों द्वारा आगे वस्तुओं के उत्पादन में सहायता के लिए तैयार किये जाते हैं।

पूँजी के प्रकार (Types of Capital) :

स्थायी पूँजी (Fixed Capital)–वह पूँजी है जो एक टिकाऊ आकार में विद्यमान रहती है तथा एक समय अवधि के दौरान सेवाओं की एक शृंखला प्रदान करती है। उदाहरण के लिए औजार, मशीनें, आदि।

चक्रीय पूँजी (Circulating Capital)–यह पूँजी का एक अन्य स्वरूप है जो उत्पादन में एक एकाकी उपयोग में अपना काम पूरा देती है तथा आगे उपयोग हेतु उपलब्ध नहीं होती। उदाहरण के लिए, बीज, ईंधन, कच्चा माल, आदि।

वास्तविक पूँजी (Real Capital) से भौतिक मालों का सन्दर्भ लिया जाता है जैसे भवन, संयंत्र, मशीनें आदि।

मानवीय पूँजी (Human Capital) से मानवीय चातुर्यों तथा योग्यता का संदर्भ लिया जाता है। इसको मानवीय पूँजी कहा जाता है क्योंकि मनुष्यों में उनकी प्रतिभा के सृजन में बड़ी मात्रा में निवेश होता है।

© The Institute of Chartered Accountants of India

दृश्य पूँजी (Tangible Capital) को अनुभूतियों द्वारा देखा जा सकता है जबकि अमूर्त पूँजी को कुछ अधिकारों तथा लाभों के रूप में जिनको अनुभूतियों द्वारा आँका नहीं जा सकता है। उदाहरण के लिए, ख्याति, पेटैन्ट अधिकार, आदि।

व्यक्तिगत पूँजी (Individual Capital)–किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग के स्वामीत्वाधीन व्यक्ति सम्पत्ति होती है।

सामाजिक पूँजी (Social Capital)–सड़कों, पुलों, आदि के रूप में सम्पूर्ण समाज से सम्बन्ध रखने वाली पूँजी।

पूँजी निर्माण (Capital Formation)–पूँजी निर्माण का अर्थ है देश के वास्तविक पूँजी स्टॉक में वृद्धि होना। दूसरे शब्दों में, पूँजी निर्माण में और अधिक पूँजीगत माल का निर्माण करना शामिल है। जैसे–मशीनें, औजार, कारखाने, यातायात उपकरण, बिजली आदि, जो माल के आगे उत्पादन में काम लाये जाते हैं। पूँजी निर्माण को विनियोजन भी कहा जाता है।

पूँजी निर्माण या विनियोजन की आवश्यकता न केवल प्रतिस्थापन तथा नवीकरण के लिए अनुभव की जाती है वरन् अतिरिक्त उत्पादन क्षमता तैयार करने के लिए भी आवश्यक है। पूँजीगत माल एकत्र करने के लिए कुछ चालू उपभोग को त्यागना होता है तथा चालू आय की बचत करनी होती है। बचतों को उत्पादकीय निवेश में भी लगाना होता है। वर्तमान उपभोग से लोगों में बचने की जितनी तत्परता अधिक होगी उतनी ही समाज द्वारा किये जा रहे निवेश तथा बचत की मात्रा नये पूँजी निर्माण की ओर अधिक जायेगी। यदि समाज अपने समस्त उत्पादन का उपभोग कर लेता है तथा कुछ नहीं बचाता तो अर्थव्यवस्था की भावी उत्पादन क्षमता गिरेगी क्योंकि वर्तमान पूँजीगत उपकरण ह्रासित हो जायेंगे। दूसरे शब्दों में, यदि चालू वर्तमान क्षमता पूरी तरह से उपभोक्ता मालों को तैयार करने में समाप्त की जाती है और कोई नये पूँजीगत माल तैयार नहीं किये जाते तो उपभोक्ता मालों का भविष्य में उत्पादन बुरी तरह से गिरेगा। यह बुद्धिमानी होगी कि विद्यमान उपभोग को कुछ कम करके इसका एक भाग पूँजीगत साजो सामान तैयार करने की ओर लगाया जाये जैसे–औजार तथा उपकरण, मशीनें तथा यातायात सुविधाएं, संयंत्र एवं उपकरण आदि। वे न केवल उत्पादकीय प्रयासों की महत्ता को बढ़ायेंगे वरन् भविष्य में उपभोक्ता माल के उत्पादन में भी वृद्धि को संभव बनायेंगे।

पूँजी निर्माण के चरण (Stages of Capital Formation)–पूँजी निर्माण के तीन मुख्य चरण हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. **बचत** (Savings)–बचत करने की सामर्थ्य पर ही पूँजी निर्माण निर्भर करता है। बचत करने की सामर्थ्य किसी व्यक्ति की आय पर निर्भर करती है। अपेक्षाकृत ऊंची आय ही ऊंची बचतों का कारण बनती है। इसका कारण है कि आय की वृद्धि के साथ-साथ उपभोग की प्रभावोत्पादकता गिरती है और बचत क्षमता बढ़ती है। ऐसा न केवल एक व्यक्ति के साथ होता है वरन् संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर लागू होता है।

एक धनी देश के पास बचत करने की सामर्थ्य अधिक होती है, इसलिए एक निर्धन देश की अपेक्षा धनी देश अधिक शीघ्रता से धनी बन सकता है, क्योंकि निर्धन देश में बचत करने की प्रवृत्ति कम होती है। अत: उसके पास राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने की सामर्थ्य दिये हुए पूँजी-उत्पादन अनुपात के अन्तर्गत सीमित ही होती है।

यह न केवल बचाने की क्षमता होती है वरन् बचाने की इच्छा भी होती है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। बचत करने की इच्छा भविष्य के बारे में तथा उस सामाजिक परिवेश के सम्बन्ध में व्यक्ति की सम्बद्धता पर निर्भर करता है जिनमें वह रहता है। यदि वह व्यक्ति दूरदर्शी होता है तथा अपने भविष्य को सुरक्षित रखना चाहता है तो अवश्य ही वह अधिक बचायेगा। साथ ही, सरकार भी कर लगाकर लोगों को अनिवार्य बचत करने के लिए विवश कर सकती है। हाल के वर्षों में, व्यावसायिक समाज की बचतें तथा सरकार की बचतें भी महत्वपूर्ण बनी हैं।

2. **बचत का गतिशीलन** (Mobilisation of Savings)–व्यक्तियों का बचत करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि यह आवश्यक है कि बचतें चलन में आयें तथा पूँजी निर्माण की प्रक्रिया के मार्ग को प्रशस्त करें। अत: अर्थव्यवस्था में, लोगों की बचतों को इकट्ठा करने तथा उनको संभावित निवेशकों तक ले जाने में बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का व्यापक जाल बिछा होना चाहिए। इस प्रक्रिया में सरकार बहुत महत्त्वपूर्ण एवं सकारात्मक भूमिका निभा सकती है। सरकार विभिन्न प्रकार की राजकोषीय एवं मौद्रिक प्रेरणायें देकर और उनका प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की दिशा में उपयोग करवा सकती है, जिससे केवल पूँजी निर्माण का कार्य ही नहीं अपितु सामाजिक दृष्टि से लाभदायक निर्माण का कार्य सम्पन्न किया जा सके।

3. **निवेश** (Investment)–पूँजी निर्माण की प्रक्रिया केवल तभी पूरी होती है जब वास्तविक बचतें वास्तविक पूँजीगत सम्पत्तियों में बदलना सम्भव हो। अर्थव्यवस्था के पास एक साहसिक वर्ग भी होना चाहिए जो व्यापार की जोखिमों को

© The Institute of Chartered Accountants of India

सहन करने को तैयार रहे तथा बचतों को उत्पादकीय क्षेत्रों में लगा सके ताकि नई पूँजीगत सम्पत्तियाँ उत्पन्न की जा सकें।

1.1.3 साहसी (Entrepreneur)

भूमि, श्रम तथा पूँजी तीनों घटकों के पश्चात् चौथा महत्त्वपूर्ण घटक साहस या उद्यम है। यह कहना पर्याप्त नहीं है कि उत्पादन भूमि, श्रम तथा पूँजी द्वारा ही संभव है। उत्पादन में ऐसा भी एक घटक होना चाहिए जो इन घटकों का गतिशीलन करें, इन्हे उचित अनुपात में मिलाये, फिर उत्पादन प्रक्रिया को करे तथा उसके जोखिमों को सहन करे। इस घटक को ही साहस कहते हैं। इसे संगठनकर्ता, प्रबंधक या जोखिम संवाहक भी कहा गया है। लेकिन विशिष्टीकरण के इस युग में प्रबन्धक या संगठनकर्ता का काम साहसी से कुछ अलग हो गया है। जबकि संगठन तथा प्रबन्ध में नैत्यक तथा दूसरे निर्वाचन की बात शामिल है। साहसी का काम उत्पादन कार्य को शुरू करना तथा उसकी जोखिमों को सहन करना है।

साहसी के कार्य (Functions of Entrepreneur)–सामान्यतया एक साहसी निम्न कार्य करता है :

(*i*) **व्यावसायिक उपक्रम तथा संसाधनों का समन्वय करना**–एक उपक्रमी व्यावसायिक अवसरों को भाँप लेता है, परियोजना विचारों की गवेषणा करता है, उत्पादन के पैमाने पर निर्णय लेता है, उत्पादों तथा प्रक्रियाओं पर विचार करता है तथा अपने उपक्रम को बनाता है, स्वामित्व करता है तथा उसका प्रबन्धन करता है। एक साहसी का पहला तथा महत्त्वपूर्ण काम है व्यावसायिक उपक्रम को प्रारम्भ करना। इसके लिए उसको उत्पादन के विभिन्न घटकों को इकट्ठा करना होता है जैसे–श्रम, पूँजी, भूमि तथा उनके बीच समन्वय करना होता है। उत्पादन के ये विभिन्न साधन नियत अनुबन्धात्मक भुगतान पाते हैं, श्रम को निर्धारित दर से मजदूरी मिलती है, भूमि या कारखाना, भवन को प्रयोग हेतु नियत किराया चुकाया जाता है तथा पूँजी पर नियत दर से ब्याज दिया जाता है। सभी स्थिर तथा परिवर्तनीय लागतों को चुकाने के पश्चात् शेष बचा कोई आधिक्य साहसी को उसके प्रयासों तथा जोखिम उठाने के पुरस्कार के रूप में बचता है। इस प्रकार एक साहसी का पुरस्कार अर्थात् लाभ निश्चित नहीं होता। वह लाभ भी कमा सकता है तथा हानि भी उठा सकता है। साहसी को चाहे लाभ हो या हानि अन्य साधन अपना भुगतान ले लेते हैं।

(*ii*) **अनिश्चितता एवं जोखिम वहन करना**–व्यवसाय की सफलता तथा अस्तित्व का अंतिम उत्तरदायित्व साहसी पर ही रहता है। साहसी द्वारा जो योजनाएं बनाई जाती हैं हो सकता है वे सही सिद्ध न हों तथा घटनाओं का वास्तविक दौर योजना के तौर तरीके से बिल्कुल अलग पड़ जाए। अर्थव्यवस्था गतिशील होती है तथा उसमें प्रतिदिन परिवर्तन आते हैं। किसी वस्तु की माँग, लागत ढाँचा, लोगों के फैशन तथा रुचियाँ तथा कर, ऋण, ब्याज दर आदि के बारे में सरकारी नीतियाँ बदल सकती हैं। ये सभी परिवर्तन व्यावसायिक फर्म की लागत अथवा माँग दशाओं में परिवर्तन कर देते हैं। हो सकता है कि अनेक व्यापक परिवर्तनों के कारण, जिन्हें साहसी ने सोचा भी न हो, फर्म को भारी घाटा उठाना पड़ सके। अत: साहसी को ये वित्तीय जोखिमें सहन करनी होनी हैं। वित्तीय जोखिमों के अतिरिक्त, साहसी तकनीकी जोखिमें भी वहन करता है जो उत्पादन की तकनीकों में सुधार तथा आविष्कारों के कारण उत्पन्न हो सकती हैं इसके परिणामस्वरूप विद्यमान तकनीकें तथा मशीनें अप्रचलन का शिकार हो जाती हैं। साहसी को जोखिमों का निर्धारण तथा वहन करना होता है। वैसे, फ्रैंक नाईट का ऐसा मत है कि लाभ अनिश्चितताओं को वहन करने का पुरस्कार है। एक साहसी को दृश्य जोखिमों को वहन करने की जरूरत नहीं है जैसे आगजनी, चोरी, डकैती, आदि क्योंकि इनके विरुद्ध तो बीमा कराया जा सकता है। अनिश्चितताएँ जोखिमों से भिन्न होती हैं इस दृष्टि से कि इनका बीमा नहीं कराया जा सकता है तथा इसलिए साहसी को स्वयं ही इन्हें वहन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, वास्तविक व्यावसायिक अनिश्चितताएँ जैसे रुचियों में परिवर्तन, प्रतिस्पर्द्धा का उदय, आदि को पहले से नहीं देखा जा सकता है तथा न ही इनका बीमा कराया जा सकता है। अत: एक साहसी लाभ कमाता है क्योंकि गतिशील अर्थव्यवस्था में वह अनिश्चितताओं को वहन करता है जहाँ नित्य कोई न कोई परिवर्तन होते हैं। जबकि साहसी के लगभग सभी कार्यों का भारार्पण किया जा सकता है अथवा उनको वेतनभोगी प्रबन्धकों को सौंपा जा सकता है तथापि जोखिम वहन करना किसी को भारार्पित किया ही नहीं जा सकता है। अत: जोखिम वहन करना एक उपक्रमी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है।

© The Institute of Chartered Accountants of India

(iii) **आविष्कार** (Innovations)–शुम्पीटर के अनुसार, एक उद्यमी का सही काम है आविष्कारों को लागू करना। आविष्कार से व्यावसायिक आवश्यकताओं की सुखद पूर्ति के लिए किसी नये विचार या आविष्कार के वाणिज्यिक प्रयोग का संदर्भ लिया जाता है। व्यापक अर्थों में, आविष्कार में समावेश होता है नये या परिष्कृत उत्पादों का प्रादुर्भाव, प्रणालियाँ तथा उत्पादन प्रक्रियाएँ, कच्चे मालों के नये या परिष्कृत स्रोत का उपयोग, नई अथवा परिष्कृत प्रौद्योगिकी को अपनाना, अद्‌भुत व्यावसायिक मॉडल्स, अभी तक न देखे गये बाजारों तक विक्रयों को ले जाना, आदि। शुम्पीटर के अनुसार, उपक्रमी का कार्य निरन्तर नये-नये आविष्कारों को लागू करना है। ये आविष्कार बाजार में और अधिक कार्यक्षमता तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक बढ़त ला सकते हैं तथा आविष्कारक को और अधिक लाभ दिला सकते हैं। एक सफल आविष्कार की समय के साथ-साथ दूसरों के द्वारा भी नकल कर ली जायेगी। अत: एक आविष्कार अल्पकाल में ही किसी उद्यमी को लाभ दिला सकता है लेकिन जब इसको व्यापक तौर पर दूसरों द्वारा अपनाया जाता है तो लाभ अन्तर्ध्यान होने की ओर उद्यत होते हैं। उद्यमी समय-समय पर नये-नये आविष्कारों को लागू करके देश के आर्थिक विकास को आगे बढ़ाते हैं तथा प्रौद्योगिकी प्रगति के प्रति योगदान देते हैं। लेकिन आविष्कारों में जोखिम का भी समावेश होता है तथा समाज में केवल कुछ ही व्यक्ति नये आविष्कारों को लागू करने की क्षमता रखते हैं जितनी आविष्कारात्मक क्षमता अधिक होती है, अर्थव्यवस्था में साहसियों की आपूर्ति उतनी ही अधिक होती है तथा साथ ही प्रौद्योगिकी विकास की दर भी अधिक होगी।

उपक्रम के उद्देश्य तथा बाधाएँ (Enterprise's Objectives and Contraints)

एक उपक्रम के बारे में प्रमापित मान्यता रही है कि उसकी व्यावसायिक गतिविधि लाभ कमाने के एकमात्र उद्देश्य के लिए चलाई जाती है लेकिन, वास्तविक दुनिया में, उपक्रम एकमात्र लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य के साथ ही निर्णय नहीं लेते। चूँकि एक उपक्रम को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण में काम करना होता है अत: उसके उद्देश्यों को ऐसे वातावरणों में अस्तित्व तथा विकास के सम्बन्ध में स्थापित किया जाना होगा।

अत: एक उपक्रम के उद्देश्यों को व्यापक तौर पर निम्नलिखित शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) कार्बनिक उद्देश्य
(2) आर्थिक उद्देश्य
(3) सामाजिक उद्देश्य
(4) मानवीय उद्देश्य
(5) राष्ट्रीय उद्देश्य।

(1) **कार्बनिक उद्देश्य** (Organic Objectives)–सभी प्रकार के उपक्रमों का मौलिक न्यूनतम उद्देश्य होता है अस्तित्व को बनाये रखना तथा टिके रहना। एक उपक्रम केवल तभी बना रह सकता है यदि वह उस मूल्य पर उत्पादों तथा सेवाओं के उत्पादन तथा वितरण में समर्थ हो जो उसको उसकी लागत वसूल करने में समर्थ बनाये। यदि उपक्रम व्यवसाय में बने रहने की अपनी लागतों को भी वसूल नहीं कर पाता तो वह उस दशा में नहीं होगा कि लेनदारों, सप्लायर्स तथा कर्मचारियों के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह कर सके, फलस्वरूप उसको दिवालियापन की ओर धकेल दिया जायेगा। अत: किसी उपक्रम का अस्तित्व उसकी व्यावसायिक गतिविधि को जारी रखने के लिए आवश्यक है। एक बार जब उपक्रम को अपने मस्तिष्क का आश्वासन मिल जाता है तो उस उद्देश्य विकास तथा विस्तार पर होगा।

एक उद्देश्य के तौर पर विकास ने पेशेवर प्रबन्धकों के उदय के साथ विशेष महत्व प्राप्त किया है। फर्म का आर.एल. मैरिस का सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि किसी कॉरपोरेट फर्म के प्रबन्धक प्रबन्धकीय तथा वित्तीय बाधाओं की पृष्ठभूमि में फर्म की संतुलित विकास दर को अधिकतम करने के लिए उद्यत रहते हैं। कॉरपोरेट फर्मों में स्वामित्व तथा प्रबन्ध का संरचनात्मक विभाजन प्रबन्धकों के लिए अवसर प्रदान करता है कि वे ऐसे उद्देश्य स्थापित कर सकें जो हो सकता है स्वामी अंशधारकों के उपादेयता कार्य के अनुरूप न हों। ऐसा संकेत दिया जाता है कि प्रबन्धकों की योग्यता या सफलता की जाँच फर्म के विकास या विस्तार को संभव बनाने में उनकी निष्पत्ति द्वारा की जाती है तथा उनके द्वारा प्राप्त किये गये पारितोषक

© The Institute of Chartered Accountants of India